श्री श्रीधर प्रणीत

गुरुस्थापना-शतक

म. विनयसागर

पञ्च परमेष्ठि महामन्त्र में पञ्च परमेष्ठि देवतत्त्व और गुरुतत्त्व का वर्णन है । देवतत्त्व में अरिहन्त और सिद्ध का समावेश होता है । गुरुतत्त्व में साधु, उपाध्याय और आचार्य का समावेश होता है । धर्मतत्त्व सद्गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है । केवली प्ररूपित दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप धर्म के अङ्ग हैं । इस लघुकायिक ग्रन्थ में गुरुतत्त्व का विस्तार से निरूपण हुआ है ।

इस शतक के कर्ता श्रीधर हैं । इस ग्रन्थ में कहीं भी गुरु का या संवत् का उल्लेख नहीं है । अतः यह निर्णय कर पाना सम्भव प्रतीत नहीं होता कि श्रीधर[1] श्रमण है या श्रावक । तथापि यह निश्चित है कि इसकी रचना महाराष्ट्री व प्राकृत में हुई है, न कि प्राकृत के अन्य भेदों मे । रचना सौष्ठव, पदलालित्य और प्राञ्जलता को देखते हुए इसका रचनाकाल अनुमानतः १३वीं-१४वीं सदी निर्धारित किया जा सकता है । इसमें सन्देह नहीं कि श्रीधर श्रमण हो या श्रावक, गुरुतत्त्व का व्यापक अनुभव रखता है । उत्तराध्ययन सूत्र, भगवती सूत्र और तत्त्वार्थ सूत्र का श्रीधर ज्ञाता था। दुप्पसहसूरि का उल्लेख होने से यह भी सम्भावना की जा सकती है कि तन्दुलवैचारिक प्रकीर्णक का भी ज्ञाता था । अतः यह भी निश्चित है कि यह श्वेताम्बर ही था ।

गुरुस्थापना शतक का 'जैसलमेर हस्तलिखित ग्रन्थसूची', 'जिनरत्नकोष' एवं 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' में इस कवि का या इस लघुकाव्य ग्रन्थ का उल्लेख न होने से यह दुर्लभ ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ किस भण्डार का है इसका मुझे भी स्मरण नहीं है । स्वर्गीय आगम प्रभाकर मुनिराज भी पुण्यविजयजी महाराज से उनके विद्वान् साथी श्री नगीनभाई शाह लिखित प्रतिलिपि सन् १९५१ में प्राप्त हुई थी ।

---

१. गाथा क्र. ९८-१०१ पढने से श्रीधर श्रावक था यह स्पष्ट हो जाता है । **श्री.**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका मुख्य वर्ण्य विषय है :- गाथा १ एवं १०३ में इसका नाम **गुरुथावणासयगं** लिखा है । गाथा १०३ में **सीधरेण रइयं** से कवि ने अपना नाम सूचित किया है । धर्म विनयप्रधान है इस कारण चतुर्विध संघ को इसका अनुकरण करना चाहिए । यह धर्म और चतुर्विध संघ श्रीपुण्डरीक गणधर से प्रारम्भ होकर दुप्पसहसूरि तक स्थिर रहेगा । इस दुषम काल में श्रमण अल्प होंगे और मुण्ड अधिक होंगे । इसी कारण आचार्यगणों से धर्माधर्म की जानकारी श्रावकों को होती है । सुगुरु-कुगुरु का भेद करते हुए षष्ठ गुणस्थानीय प्रमत्त और सप्तम गुणस्थानीय अप्रमत्त का भगवती सूत्र के आधार पर भेद-विभेद दिखाते हुए सुन्दर विश्लेषण किया है । उन सुगुरुओं की कृपा से ही श्रमणोपासक नाम सार्थक होता है अन्यथा नहीं। सद्गुरु के प्रसाद से ही सत्अनुष्ठान, सात क्षेत्रों का ज्ञान, और सम्पूर्ण समाचारी का ज्ञान भी उन्हीं के उपदेश से प्राप्त हो सकता है । कई ऐसा कहते हैं कि वर्तमान में सुसाधु नहीं है । उन्हें यह सोचना चाहिए कि सुधर्म स्वामी से जो साधुपरम्परा चल रही है वह आदरणीय एवं अनुकरणीय है। कई श्रावक लोग सुगुरु के अभाव में जो कि रागद्वेष से पूरित हैं, यथाछन्द, स्वच्छन्द हैं, अर्थात् वेशधारी होते हुए भी जो शिथिलाचारी हैं उन कुगुरुओं को सुगुरु मानकर जो व्रतादि ग्रहण करते हैं या दूसरों को प्रेरित करते हैं, वह सचमुच में धिक्कार के योग्य हैं । व्रत, अरिहंत, सिद्ध, साधु, देव और आत्मा के समक्ष ही ग्रहण किये जाते हैं, स्वच्छन्दमतियों के समीप नहीं। सुगुरु के अभाव में कई श्राद्ध इन वेशधारियों की निश्रा में जो व्रत-क्रियादि करते हैं वे वास्तव में अत्यन्त मूढ़ हैं । दुषम-सुषम काल में साधु के बिना धर्म विच्छिन्न हो जाता है तो इस दुषम काल की तो बात ही क्या ?। पल्लवग्राही पाण्डित्यधारक वेशधारी दर्शन से बाह्य हैं। सात निह्नवों का, कूलवालुक का उदाहरण देते हुए इनको शासन के प्रत्यनीक बताये है । अतएव ३६ गुणधारक आचार्य ही सुगुरु हैं, उनके आश्रय में ही धर्मादि कृत्य करने चाहिए । इस प्रकार सुगुरु और कुगुरु का भेद दिखाते हुए सुगुरु की निश्रा ही श्राद्ध के लिए ज्ञेय और उपादेय है तथ उन्हीं सुगुरुओं की आश्रय में समस्त धर्म-व्रतादि कृत्य करने से श्राद्ध का कल्याण हो सकता है, क्योंकि वे धर्म के पूर्ण जानकार, व्यवहार और निश्चय के जानकार तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुश्रुत होते हैं अतः वे ही सुगुरु हैं ।

अन्त में कवि कहता है कि इस लघु कृति में जो कुछ उत्सूत्र वचन लिखने में आया हो उसका संशोधन बहुश्रुत ज्ञानी मेरे ऊपर अनुग्रह करके करें । गुरु के उपदेश से ही जिनवचन का सार ग्रहण कर यह शतक लिखा है ।

विचारणीय प्रश्न है कि श्रावक के १२ व्रत कहे गए हैं । सुगुरु के अभाव में १२वाँ अतिथि संविभाग व्रत सम्भव नहीं है, किन्तु यथाछन्दी वेशधारी सुगुरु के अभाव में भी १२वाँ व्रत स्वीकार करते हैं (गाथा ३८ से ४०) ।

आज के समय में भी श्रावक धर्म की दृष्टि से यह कृति अत्यन्त ही उपादेय और आचरणीय है ।

गुरुस्थापना-शतक

नमिरसुरमउडमाणिक्कतेयविच्छुरियपयनहं सम्मं ।
नमिऊण वद्धमाणं वुच्छं **गुरुठावणा-सयगं** ॥१॥
हीणमई अप्पसुओ अनाणसिरिसेहरो तहा धणियं ।
गंभीरागमसायर -पारं पावेउमसमत्थो ॥२॥
जुग्गोहमजुग्गो वि हु जाओ गुरुसेवणाइ तं जुत्तं ।
जं सूरसेवणाए चंदो वि कलाणिही जाओ ॥३॥
गुरुआगराओ सुत्तत्थ-रयणाणं गाहगा य तिन्नेव ।
रागेण य दोसेण य मज्झत्थत्तेण णेयव्वा ॥४॥
पढमो बीओऽणरिहो तइओ सुत्तत्थरयणजुग्गु त्ति ।
दिट्ठंतो आयरिओ अंबेहि पओयणं जस्स ॥५॥
धम्मं विणयपहाणं जे(जं?) भणियं इत्थ सत्थगारेहिं ।
सो कायव्वो चउविहसंघो समणाइए सम्मं ॥६॥
जं विणओ तं मुखं(क्खं?) छंडिज्जा पंडिएहिं नो कहवि ।
जं सुयरहिओ वि नरो विणएण खवेय(इ) कम्माइं ॥७॥
जिणसासणकप्पतरुमूलं साहू सुसावया साहा ।
मूलम्मि गए तत्थ य अवरं साहाइयं विहलं ॥८॥
सिरिपुंडरीयपमुहो दुप्पसहो जाव चउविहो संघो ।
भणिओ जिणेहिं जम्हा न हु तेण विणा हवइ तित्थं ॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यतः-

न विणा तित्थं नियंठेहिं नातित्था य नियंठया ।
छक्कायसंजमो जाव ताव अणुसज्जणा दोण्हं ॥१०॥
तम्हा आयरिया वि हु संति नत्थि त्ति जे वियारंति ।
तं मिच्छा जओ जणे तेच्चिय सुत्तत्थदायारो ॥११॥
बहुमुंडे अप्पसमणे य इय वयणाओ य संति आयरिया ।
जेसिं पसाया सड्ढा धम्माधम्मं वियाणंति ॥१२॥
जह दिणरत्तिं सम्मं मिच्छं पुन्नं तहेव पावं च ।
तह चेव सुगुरु कुगुरु मन्नह मा कुणह मय(इ)मोहं ॥१३॥
चरणस्स नव य ठाणा इह य पमत्तापमत्तअहिगारो ।
तत्थ अपमत्तविसयं कह लम्बेइ इत्थ एगविहं ॥१४॥
होइ पमत्तम्मि मुणी चउक्कसायाण तिव्वउदयम्मि ।
स पमत्तो तेसिं चिय अपमत्तो होइ मंदुदए ॥१५॥
पमत्ते नोकसायाण उदएणं इत्थ चरणजुत्तो वि ।
अट्टज्झाणोवगओ तेण विणा होइ अपमत्ते ॥१५॥
नाणंतरायकम्मं लम्बेइ तिविहं पमत्त-अपमत्ते ।
बीयं छच्चउ पण नव-भेएहिं बंधुदयसंते ॥१६॥
तेरिक्कारस जोगा हेउणो पुण हवंति छ चउवीसा ।
लेसाओ छच्च तिन्नि य हुंति पमत्तापमत्तेसु ॥१७॥
अविरय विरयाविरएसु सहसपुहुत्तं हवंति आगरिसा ।
विरए य सयपुहुत्तं लब्भेंति पमायवसगेण ॥१९॥

यतः

ठिइठाणे ठिइठाणे कसायउदया असंखलोगसमा ।
अणुभागबंधठाणा इय इक्किक्के कसाउदए ॥२०॥
कम्मस्स य पुण उदए अवराहो होइ नेव तव्विरहे ।
इय जाणिऊण सम्मं मा कुज्जा संजमे अरुइं ॥२१॥
अपमत्तपमत्तेसुं अंतमुहुत्तं जहक्कमं कालो ।
समणाण पुव्वकोडी ता लब्भइ कह ण एगविहं ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमे य पंचमंगे य वियारिए इत्थ होइ सुहबुद्धी ।
ता आलंबिय भाउय ! एगपयं गच्छ मा मिच्छं ॥२३॥
साहूणं विणएणं वयणपरेणं च तह य सेवाए ।
समणोवासगनामं लब्भइ न हु अन्नहा कहवि ॥२४॥
जो सुणइ सुगुरुवयणं अत्थं वावेइ सत्तखित्तेसु ।
कुणइ य सदणुट्ठा(ट्ठा)णं भन्नइ सो सावओ तेण ॥२५॥
जं निज्जइ जिणधम्मं जं लब्भइ सुत्त-अत्थपेयालं ।
सो पुण साहुपसाओ ता मा होहिसि कयग्घेण ॥२६॥
सव्वा सामायारी उवएसवसेण लब्भइ मुणीणं ।
सा पुण सुंदरबुद्धी कीरइ जं अणुवएसेण ॥२७॥
संभिन्नसुयस्सऽत्थं सुसंजओ वि हु न तीरए कहिउं ।
ता तुच्छमई सड्ढो कह होइ वियारणसमत्थो ॥२८॥
केवलमभिन्नसुयं मन्निज्जइ विवरणासमत्थेहिं ।
तं पुण मिच्छत्तपयं जह भणियं पुव्वसूरीहिं ॥२९॥
अपरिच्छियसुयनिहस्स केवलमभिन्नसुत्तचारिस्स ।
सव्वुज्जमेण वि कयं अन्नाणतवे बहुं पडइ ॥३०॥
केई भणंति इण्हिं सुसावया संति इत्थ नो साहू ।
तं पुण वितहं जम्हा न हु कोई कामदेवपए ॥३१॥
सिरि सुहमसामिणा जं सुत्तम्मि परूवियं तहच्चेव ।
साहुपरंपरएणं अज्ज वि भासंति भवभीरू ॥३२॥
"जं अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहिं ।
तं नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ ऊसासमित्तेण ॥३३॥"
तं पुण विणयाणुगुणं सप्पुरिसाणं हवेइ सुहहेऊ ।
अविणीयस्स पणस्सइ अहवा वि विवड्ढए कुमई ॥३४॥
आयरियाण सगासे सुत्तं अत्थं गहित्तु नीसेसं ।
तेसिं पुण पडिणीओ वच्चइ रिसिघायगाण गइं ॥३५॥
जाणंता वि य विणयं केई कम्माणुभावदोसेणं ।
नेच्छंति पउंजित्ता अभिभूया रागदोसेहिं ॥३६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपइ केई सड्ढा अलद्धगुरुणो वयाइउच्चारं ।
कारिंति परजणाणं हीही धिट्ठत्तणं तेसिं ॥३७॥
धम्मो दुवालसविहो सुसावयाणं जिणेहि पन्नत्तो ।
साहु-अभावा सो पुण इक्कारसहा हवइ तेसिं ॥३८॥
इह अतिहिसंविभागो सुसाहूणं चेव होइ कायव्वो ।
सामन्नानादंसणवुड्ढिकए परमसड्ढेहिं ॥ ३९ ॥
जे पुण सड्ढाण च्चिय बारसमवयं पुणो परूविंति ।
कारिंति य अप्पेच्छा ते णेयव्वा अहाच्छंदा ॥४०॥
केई सुबुद्धिनायं परिभाविय पन्नविंति उच्चारं ।
कारंति य सा सुंदरबुद्धी न हु होइ निउणमई ॥४१॥
जं पुण सुगुरुसमीवे सुबुद्धिणा गहिय-देसियं धम्मं ।
हेण समं समसीसी अलद्धगुरुणो न ते होइ ॥४२॥
जे पुण अलद्धगुरुणो जहा तहा कारविंति उच्चारं ।
ते जिणमइ(य)पडिणीया न हुंति आराहगा कहवि ॥४३॥
साहीणे साहुजणे गिहीण गिहिणो वयाइं जो देइ ।
साहुअवन्नाकरणा सो होइ अणंतसंसारी ॥४४॥
गिहिणो गिहत्थमूले वयाइं पडिवज्जओ महादोसो ।
पंचेव सक्खिणो जं पच्चक्खाणे इमे भणिया ॥४५॥
अरिहंत सिद्ध साहू देवो तह चेव पंचमो अप्पा ।
तम्हा गिहत्थमूले वयगहणं नेय कायव्वं ॥४६॥
जं सच्छंदमईए रएसु उच्चारिएसु पुण तेसिं ।
जइ कहवि होइ खलणा ता कह सुद्धी गुरूहि विणा ॥४७॥
लज्जाइ गारवेण इ बहुस्सुयमएण वावि दुच्चरियं ।
जे न कहंति गुरूणं न हु ते आराहगा हुंति ॥४८॥
कच्छमाईकिरिया सड्ढाणं जाव अणस्सणं भणिया ।
साहुवयणेण किज्जइ अन्नो पुण किं वहइ गव्वं ? ॥४९॥
संपइ भणंति केई जीवा पावंति अस्सुयं धम्मं ।
सच्चं पुण ते मूढा सुयपरमत्थं न याणंति ॥५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्तेयबुद्धिलाभेण जाईसरणेण ओहिनाणेण ।
दट्ठूण पुव्वसूरिं तो पच्छा लहइ जिणधम्मं ॥५१॥
तत्थ य साहुपसाओ नेयव्वो इत्थ सत्थगारेहिं ।
सच्छंदमईणं पुण वड्ढइ कुमई न संदेहो ॥५२॥
संपइ केई सड्ढा गाढं किरियं कुणंति गुरुरहिया ।
न निस्साइं कुणंते हीलंता हुंति अइमूढा ॥५३॥
कुगुरूणं परिहारे सुगुरुसमीवे कियाइ किरियाए ।
जायइ सिवसुहहेऊ सुसावयाणं न संदेहो ॥५४॥
सूरेण विणा दिवसं अब्भेण विणा न होइ जलवुट्ठी ।
बीएण विणा धन्नं न तहा धम्मं गुरूहि विणा ॥५५॥
छसु अरएसुं जइ वि हु सव्वगईसुं पि लब्भए सम्मं ।
धम्मं तु विरइरूवं लब्भइ गुरुपारतंतेहिं ॥५६॥
जह आहारो जायइ मणसा किरियाइ देवमणुयाणं ।
सम्मत्तचरणधम्माण परोप्परं एस दिट्ठंतो ॥५७॥
आवस्सयाइ मुत्तुं केई कुव्वंति निच्चलं झाणं ।
ते जिणमयवरलोयणरहिया मग्गंति सिवमग्गं ॥५८॥
सयलपमायविमुक्का जे मुणिणो सत्तमाइठाणेसु ।
तेसिं हवेइ निच्चलझाणं इयराण पडिसेहो ॥५९॥
धम्मज्झाणं चउव्विहभेयं पकुणंतु भावओ भविया ।
आवस्सयाइजुत्तं जह सुलहो होइ सिवमग्गो ॥६०॥
विहिअविहिसंसएणं केई गिण्हित्तु किं पि न(नो?)वायं ।
किरियं नो भवभीरू कुणंति तेसिं पि अन्नाणं ॥६१॥
जइ नत्थि च्चिय गुरुणो ता तेण विणा कहं वहइ तित्थं ।
अरएहिं बहुएहिं तुंबेण विणा जहा चक्कं ॥६२॥
अह दव्वखेत्तकालं वियारिऊणं गुरूसु अणुरायं ।
कुज्जा चइत्तु माणं सुधम्मकुसला जहा होह ॥६३॥
नियगच्छे परगच्छे जे संविग्गा बहुस्सुया साहू ।
तेसिं अणुरागमइं मा मुंचसु मच्छरेण हओ ॥६४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संविग्गमच्छरेणं मिच्छद्दिट्ठी मुणी वि नायव्वो ।
मिच्छत्तम्मि न चरणं तत्तो य विडंबणा दिक्खा ॥६५॥
वेसं पमाणयंता केई मन्नंति साहुणो सव्वे ।
केई सव्वनिसेहं तत्थ य दुण्हं पि मूढमई ॥६६॥
जह नाइल-सुमईहिं सुहगुरु-कुगुरूण मन्नणं विहियं ।
ना(ता?) अज्ज वि भेयदुगं गिण्हसु सुद्धं परिक्खित्ता ॥६७॥
साहूहिं विणा धम्मो वुच्छिन्नो आसि दुसमसुसमाए ।
सड्ढेहि समत्थेहि वि न रक्खिओ अज्ज का वत्ता ? ॥६८॥
समणसमणीहि सावय-सुसावियाहिं च पवयणं अत्थि ।
मन्नसु चउसमवायं जइ इच्छसि सुद्धसम्मत्तं ॥६९॥
संघे तित्थयरम्मी सूरीसुं सूरिगुणमहग्घेसु ।
अप्पच्चओ न जेसिं तेसिं चिय दंसणं सुद्धं ॥७०॥
जे उण इय विवरीया पल्लवगाही सुबोहसंतुट्ठा ।
सुबहुं पि उज्जमंता ते दंसणबाहिरा नेया ॥७१॥
जह वि हु पमायबहुला मुणिणो दीसंति तह वि नो हेया ।
जेसिं सामायारी सुविसुद्धा ते हु नमणिज्जा ॥७२॥
जइ एवं पि हु भणिए मन्निस्सह नेय साहुणो तुब्भे ।
ता उभओ भट्ठाणं न सुग्गई नेय परलोगो ॥७३॥
जम्हा गुरूण सिक्खं सिक्खंत च्चिय हवंति हु सुसीसा ।
तेसिं पुण पडिणीया जम्मणमरणाणि पावंति ॥७४॥
हंतूण स(से?)वमाणं सीसे होऊण ताव सिक्खाहि ।
सीसस्स हुंति सीसा न हुंति सीसा असीसस्स ॥७५॥
जइ गुरुआणाभट्ठो सुचिरं पि तवं तवेइ जो तिव्वं ।
सो कूलवालयं पिव पणट्ठधम्मो लहइ कुगइं ॥७६॥
अणमन्नंतो नियगुरुवयणं जाणंतओ वि सुत्तत्थं ।
इक्कारसंगनिउणो वि भवे जमालिव्व लहइ दुहं ॥७७॥
संपइ सुगुरूहि विणा छउमत्थाणं न कोई आहारो ।
साहूण जओ विरहे सड्ढा वि हु मिच्छगा जाया ॥७८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"मइभेयाऽसच्चग्गह २ संसग्गीए ३[य] अभिणिवेसेणं ४।
चउहा खलु मिच्छत्तं साहूणमदंसणेणऽहवा ॥७९॥"
जिणवयणं दुन्नेयं अइसयनाणीहिं नज्जए सम्मं ।
ववहारो पुण बलवं न निसेहो अत्थि साहूणं ॥८०॥
मन्निज्ज चरणधम्मं मा गव्विज्जा गुणेहि नियएहि ।
न य विम्हओ वहिज्जइ बहुरयणा जेण महपुढवी ॥८१॥

यतः-

मा वहउ कोइ गव्वं इत्थ जए पंडिओ अहं चेव ।
आसव्वन्नुमयाओ तरतमजोगेण मइविहवा ॥८२॥
भत्तीसु अभत्तीसु य गुरुनिन्हवणे य इत्थ दिट्ठंता ।
सिरिइंदभूइ - मंखलिपुत्तोरगसूयरो य तहा ॥८३॥
गुरुनिन्हवणे विज्जा गहिया वि बहुज्जमेण पुरिसाणं ।
जायइ अणत्थहेऊ रयनेउरपवरमल्लुव्व ॥८४॥
"विणओवयार माणस्स भंजणा पूयणा गुरुजणस्स ।
तित्थयराणं आणा सुयधम्माराहणा किरिया ॥८५॥"
एए छच्चेव गुणा साहूणं वंदणे पुण हवंति ।
सग्गाऽपवग्गसुक्खं पएसिराउव्व लहइ जणो ॥८६॥
एगो जाणइ भासइ बहुयपयं किंतु एगमुस्सुत्तं ।
एगो एगंतं पि हु सुद्धं जह छलुय मासतुसो ॥८७॥
एगे उस्सुयवयणे जंपिए जं हवेइ बहु पावं ।
तं सयजीहो वि नरो न तीरए कहिउ वासंसए ॥८८॥
पढममिह मुसावायं दिट्ठीरागं तहेव मिच्छत्तं ।
आणाभंगं माणं परओ माया वि मेरुसमा ॥८९॥
सम्मत्तचरणभेओ तस्स य वयणेण होइ संघम्मि ।
कलहो वि तओ जायइ अप्पा उ अणंतसंसारी ॥९०॥
जे पुण पढंति सुत्तं छज्जीवणियाओ सावया उवरिं ।
सो तेसिमणायारो चउद्दसपुव्वीहिं जं भणियं ॥९१॥
सिक्खावियं साहुविहा उववायगई ठिई कसाया य ।
बंधता वेयंता पडिवज्जाइक्कमे पंच ॥९२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छज्जीवणिया उवरिं भणंति के वि कम्मरोगिणो सुत्तं ।
अप्पत्थ अंबरसलुद्धनिवमिव तं तेसिऽणत्थकरं ॥९३॥
देवे गुरुम्मि संघे भत्तीए सासणम्मि जं महिमं ।
कीरइ सो आयारो चउत्थठाणम्मि सड्ढाणं ॥९४॥
वज्जिज्जा उड्डाहं अन्नेसिं हि वि सावयाण किं चुज्जं ।
चिंतइ पुण उड्डाहं सासणे हुज्ज सा कहवि ॥९५॥
खुद्दत्तणपरिहरणं परोवयारे तहेव आउत्तो ।
अरिहंताई एसो नेयव्वो पंचमो पुरिसो ॥९५॥
जइ छत्तीस गुणच्चिय गुरुणो ताइ वीस गुणजुत्ता(?) ।
गिहिणो वि हु जोइज्जा इयव[य?]णाओ परिनिसेहो ॥९६॥
जत्थ य छत्तीस गुणा मिलिया लब्भंति नेय गच्छम्मि ।
दोहिं चेव गुणेहिं सो वि पमाणीकओ होई ॥९७॥
जइ गच्छम्मि सुकज्जे सारणा वारणा अकज्जम्मि ।
ता ववहारनएणं ववहाररउ च्चिय सुसड्ढो ॥९८॥
एएणं भणिएणं गुरुभत्ती होइ परुवयारं च ।
ता एएसिं दुण्ह वि मा हुज्जा कह वि मह विरहो ॥९९॥
केई उवएसमिमं सोउं दुम्मंति सावया हियए ।
तं अन्नाणं जम्हा करणिज्जमिणं तु सड्ढाणं ॥१००॥
सिरिवीरसासणे सत्त निन्हवा आसि जे पुरा तेसिं ।
चउरो सड्ढेहिं चिय विबोहिया पवरजुत्तीहिं ॥१०१॥
इत्थ य जं पुण भणिए उस्सुयववयणं हविज्ज जइ कहवि ।
सोहिंतु तं बहुसुया मह उवरिमणुग्गहं काउं ॥१०२॥
जिणपवयणस्स सारं संगहिऊणं गुरूवएसेण ।
इय **सीधरेण** रइयं नंदउ **गुरुठावणासयगं** ॥१०३॥

इथि श्रीगुरुस्थापनाशतकसूत्रं समाप्तम् ॥

यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया ।
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥

लि० **रत्नभद्रेन** ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org